इक्कीसवीं सदी के पहले दशक का समापन: युगान्तरकारी परिवर्तनों के दिशा-संकेतक और हमारे कार्यभार

वर्ष 2009 बीत गया और साथ ही 21वीं सदी का पहला दशक भी। यह पूरा दशक ऐतिहासिक रूप से कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का दशक रहा। इस पूरे दौर में विश्व भर में उथल-पुथल ला देने वाली घटनाओं का आधिक्य रहा। नये दशक के मोड़-बिन्दु पर खड़ा समय कई युगान्तरकारी परिवर्तनों की ओर इशारा कर रहा है। बीता दशक पूँजीवाद के लिए 'असफलताओं का दशक' रहा। 1990 के दशक में पूँजीवाद सोवियत संघ के नामधारी समाजवाद के पतन और अमेरिकी साम्राज्यवाद की ताक़त के बाह्य रूप के तौर पर बढ़ने के साथ ज़बरदस्त आत्मविश्वास से भर गया था। हर्षातिरेक में फ़ुकोयामा सरीखे पूँजीवाद के टुकड़खोर टकसाली टीका-टिप्पणीकार 'उदार पूँजीवादी जनतन्त्र की अन्तिम विजय', 'इतिहास का अन्त', 'विचारधारा का अन्त' आदि की घोषणाएँ करने लगे थे। लेकिन 1990 के दशक का तीन-चौथाई हिस्सा बीतते-बीतते इन घोषणाओं के स्वर से उसी प्रकार हवा निकल गयी जैसे कि पुराने हवा वाले ग्रामोफ़ोन से हवा निकल जाती है। 1997 में दक्षिण एशियाई संकट, उसके बाद 'डॉट-कॉम क्रैश', उसके बाद 'हाउसिंग बबल' का फटना, फिर 'सबप्राइम संकट' – तब से विश्व पूँजीवाद के मुखियाओं को साँस लेने का अवसर नहीं मिला है। तीन वर्ष पहले जब फ़ुकोयामा भारत आया तो उसे 1990 के दशक की शुरुआत में कहे गये अपने शब्द याद नहीं रह गये थे। वही शख़्स जिसने समाजवाद, मार्क्सवाद आदि की मृत्यु की घोषणा कर दी थी अब मार्क्सवाद को पूँजीवादी जनवाद के लिए सबसे बड़ा ख़तरा बता रहा था। सच है, समाजवाद का हौवा एक बार फिर समस्त पूँजीवादी विश्व को सता रहा है!

विश्व पूँजीवाद बड़ी मरी-गिरी सेहत में 21वीं सदी के दूसरे दशक में प्रवेश कर रहा है। पिछला दशक उसके असाध्य रोगों और संकटों के नाम रहा जिससे वह अभी तक उबर नहीं पाया है। बीते दशक में कुछ ऐतिहासिक महत्त्व के विकास हुए जिन पर चर्चा करना ज़रूरी है। इन परिवर्तनों पर चर्चा हम कालानुक्रम के अनुसार नहीं करेंगे, वरन् ऐतिहासिक महत्त्व के अनुसार करेंगे।

पहला सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन जिसने इस दशक के चरित्र का निर्धारण करने वाले सबसे महत्त्वपूर्ण कारक की भूमिका निभायी वह थी 2006 से शुरू हुई मन्दी जिससे अभी तक विश्व पूँजीवाद उबर नहीं पाया है। जैसा कि हम जानते हैं, यह 1930 के दशक के बाद की सबसे भयंकर मन्दी है। करोड़ों मज़दूर अब तक इस मन्दी में अपना रोज़गार खो चुके हैं, हज़ारों बैंक तबाह हो चुके हैं, लाखों छोटे निवेशक बर्बादी के कगार पर पहुँच गये हैं, तमाम देशों की अर्थव्यवस्थाएँ असमाधेयता के संकट का शिकार हो चुकी हैं या होने के कगार पर हैं, ग्रीस, इटली और पुर्तगाल जैसे यूरोप के कम विकसित देशों में भी खाद्यान्न दंगे हो रहे हैं, अभी अफ़्रीका, एशिया और लातिनी अमेरिका के देशों की तो बात ही छोड़ दी जाय, विश्व में बेरोज़गारी अभूतपूर्व दर से बढ़ी है। ये सभी चीज़ें विश्व की मेहनतकश जनता और न्यायप्रिय नौजवानों के सामने पूँजीवाद की व्यर्थता को साबित कर रही हैं। आज इस संकट से उबरने के लिए विश्व पूँजीवाद के मुखियाओं समेत सभी पूँजीवादी देश 'कल्याणकारी' राज्य के कीन्सियाई नुस्ख़ों को आज़मा रहे हैं, लेकिन 2009 का मध्य आते-आते साफ़ हो चुका था कि अब वह युग बीत गया था जिसमें कीन्सियाई नुस्ख़े पूँजीवाद की अराजकता के दण्ड के असर को कुछ समय के लिए भी थोड़ा कम कर पाते। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के दौर में 'कल्याणकारी' राज्य के नुस्ख़े ने विश्व पूँजीवाद की लुटिया डूबने से बचाने में मदद की थी। लेकिन तब द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण हुए विध्वंस के

बाद पुनर्निर्माण के कार्य ने विश्व पूँजीवाद के झड़ते पौरुष के लिए वियाग्रा का काम किया था। लेकिन अब ऐसी कोई वियाग्रा भी काम नहीं आ रही है। इराक़ में पुनर्निर्माण के काम से अमेरिकी, ब्रिटिश, जर्मन और फ़्रांसीसी पूँजीवाद ने काफ़ी उम्मीदें लगा रखी थीं, लेकिन इराक़ी जनता के प्रतिरोध युद्ध ने इराक़ युद्ध को एक मुनाफ़े वाली मशीनरी बनाने की सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। मुनाफ़ा तो दूर, इराक़ युद्ध उनके लिए ऐसे ख़र्चे का कारण बन गया जो आर्थिक संकट के साथ मिलकर इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं का मलीदा निकाल रहा है। यही कारण है कि अब अमेरिकी सैन्य रणनीति के केन्द्र में इराक़ की बजाय अफ़गानिस्तान आ गया है। लेकिन पिछले चार महीनों में साबित हो गया है कि अफ़गानिस्तान कोई 'केकवॉक' नहीं है और वहाँ भी अमेरिकी साम्राज्यवाद के पाँव धँसते जा रहे हैं। एक-एक करके अमेरिका के सारे पुराने वफ़ादार दोस्त अफ़गानिस्तान में उसका साथ छोड़ रहे हैं। कुल मिलाकर 2006 में संकट के खुलकर उभरने के बाद से विश्व अर्थव्यवस्था में उबरने का कोई निशान नहीं दिख रहा है। जिसे आज 'रिकवरी' का नाम दिया जा रहा है वह बस लोगों को एक झूठी आशा दिलाने जैसा है और इसका अर्थ वृद्धि नहीं बल्कि "ह्रास की बढ़ती दर को थामना है। और यह तथाकथित 'रिकवरी' भी इतनी नाज़ुक है कि किसी भी छोटी-मोटी घटना से डगमगा जा रही है। अभी हाल ही में बुर्ज दुबई के संकट की घटना ने पूरे विश्व की अर्थव्यवस्थाओं में आतंक की लहर दौड़ा दी थी और शेयर बाज़ारों का ग़श खाकर गिरना जारी हो गया था। एक अन्य बात यह है कि यह तथाकथित 'रिकवरी' उत्पादक निवेश से नहीं पैदा हुई है बल्कि सरकारों द्वारा दिये गये प्रोत्साहन पैकेजों से थोड़ी देर के लिए पैदा हुई है। जिस ऋण वित्तपोषित उपभोग के कारण मौजूदा संकट ने इतना गम्भीर रुख़ अख़्तियार किया है उसी से इस संकट से निजात पाने की कोशिश की जा रही है जिसकी नियति में असफलता ही हो सकती है। आर्थिक विश्लेषक अभी से कह रहे हैं कि 2010 में विश्व पूँजीवाद को एक और तगड़ा झटका लगने की पूरी उम्मीद है और यह 'रिकवरी' नक़ली है।

अगर हम विश्व पूँजीवाद की आर्थिक वृद्धि की दरों को देखें तो स्पष्ट है कि 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1980 के दशक के पूर्वार्द्ध से लेकर अभी तक उसमें गिरावट का रुझान रहा है। 1990 के दशक के मध्य के बाद से इस मन्द मन्दी में झटके भी आने लगे। 1997 के दक्षिण एशियाई संकट के बाद से 5 बड़े संकट पूँजीवाद को नींव से हिला चुके हैं। विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में तेज़ी अब एक दिवास्वप्न बन चुका है। 2000 का दशक सतत मन्दी का शिकार रहा है। इस पूरे दशक ने विश्व की जनता को इस बात का गहराई से अहसास कराया है कि विश्व पूँजीवाद उन्हें ग़रीबी, भुखमरी, कुपोषण, बेरोज़गारी और तबाही के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकता है। बीते दशक ने दिखला दिया है कि पूँजीवाद एकमात्र विकल्प क़तई नहीं हो सकता है। एकमात्र विकल्प जो विश्व की जनता के सामने है वह है पूँजीवाद को उखाड़ फेंकना और उसकी जगह एक मानव-केन्द्रित व्यवस्था का निर्माण करना जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे पर आम मेहनतकश जनता का नियंत्रण हो और फैसला लेने की ताक़त उनके हाथों में हो। बीते दशक ने दिखला दिया है कि पूँजीवाद की ऊपरी सैन्य शक्तिमत्ता खोखली है और अन्दर से पूँजीवादी विश्व व्यवस्था बेहद कमज़ोर हो चुकी है, सड़ चुकी है और अब उसे इतिहास के कूड़ेदान में पहुँचाए जाने के लिए जनक्रान्तियों के एक सिलसिले की शुरुआत की ज़रूरत है। निस्सन्देह, यह सिलसिला शुरू करना आज भी एक भारी चुनौती बना हुआ है, ख़ास तौर पर तब जबकि नये दशक के आरम्भ-बिन्दु पर भी जनता की क्रान्तिकारी ताक़तें वैचारिक और राजनीतिक तौर पर कमज़ोर हैं, सांगठनिक तौर पर बिखरी हुई हैं और पुरानी क्रान्तियों के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति उनकी पैरों की बेड़ी बनी हुई है। आज पूंजीवाद अपनी गतिशीलता की ताक़त पर नहीं बल्कि अपने जड़त्व की ताक़त पर टिका हुआ है। वह टिका है इसलिए वह टिका हुआ है। 21वीं सदी के पहले दशक ने दिखला दिया है कि पूँजीवादी व्यवस्था अपनी सभी सकारात्मक सम्भावना-सम्पन्नताओं से रिक्त हो चुकी है। यह बुढ़िया मुर्ग़ी अब विश्व को युद्ध, ग़रीबी, बेरोज़गारी, भुखमरी, कुपोषण आदि जैसे सड़े हुए अण्डे ही दे सकती है और इसकी उपयुक्त जगह इतिहास का कूड़ेदान है।

बीते दशक की दूसरी बड़ी परिघटना रहा अमेरिकी साम्राज्यवाद का अभूतपूर्व ह्रास। इस दशक की शुरुआत में अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर पर हमला हुआ और उसे आधार बनाकर जॉर्ज बुश की सरकार ने अलक़ायदा के आतंकी नेटवर्क के ख़ात्मे के लक्ष्य के नाम पर इराक़ पर एक अन्यायपूर्ण युद्ध थोप दिया। अमेरिकी साम्राज्यवाद ने अपनी प्रचार मशीनरी के ज़रिये पूरी दुनिया के दिमाग़ में यह बात बिठाने की कोशिश की कि इराक़ के पास जनसंहार के हथियार हैं और वह विश्व शान्ति के लिए ख़तरा है। आज सारी दुनिया जानती है कि यह एक झूठा प्रचार था और इराक़ के पास जनसंहार के कोई हथियार नहीं निकले। इराक़ युद्ध अपने संकट से उबरने के लिए इराक़ की अकूत तेल सम्पदा पर क़ब्ज़े के लिए साम्राज्यवाद द्वारा इराक़ी जनता पर थोपा गया साम्राज्यवादी युद्ध था। इस युद्ध में अमेरिका को शर्मनाक रणनीतिक हार का सामना करना पड़ा है और अमेरिकी साम्राज्यवादी वहाँ से मुँह छिपाकर भागने को मजबूर हो रहे हैं। लेकिन साम्राज्यवादी अपनी पुरानी भूलों से सबक़ लेना भूल चुके हैं और अब अमेरिकी साम्राज्यवाद अफ़ग़ानिस्तान में वही ग़लती कर रहा है जो वह इराक़ में कर चुका है। अफ़ग़ानिस्तान में अमेरिका बुरी तरह फँस चुका है। बिन लादेन का पकड़ना एक मृग मरीचिका बन चुका है और हताशा और बेख़याली में बौखलाया साम्राज्यवाद अपने पाँव अफ़गानिस्तान में फँसा चुका है। इस तथाकथित आतंक-विरोधी

युद्ध ने दिखला दिया है कि सैन्य ताक़त के बूते पर साम्राज्यवाद विश्व विजय के सपने नहीं पूरे कर सकता। उसकी सैन्य ताक़त को जनता के सामने मुँहकी खानी पड़ती है। किसी अर्थपूर्ण विकल्प की अनुपस्थिति में अगर जनता साम्राज्यवाद से जीत नहीं सकती तो वह साम्राज्यवाद के सामने घुटने भी नहीं टेकती है। मध्य-पूर्व साम्राज्यवाद के लिए एक नासूर बन चुका है। मध्य-पूर्व में फँसे होने के कारण अमेरिकी साम्राज्यवाद लातिनी अमेरिका पर उस तरह से ध्यान नहीं दे पा रहा है जिस तरह वह पहले देता रहा है। अमेरिकी साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ नफ़रत के कारण लातिन अमेरिकी जनता ने कई देशों में ऐसी सत्ताएँ स्थापित की हैं जो अमेरिकी साम्राज्यवाद का मख़ौल उड़ा रही हैं और उसके प्रभुत्व को चुनौती दे रही हैं। निश्चित तौर पर, इन सत्ताओं को समाजवादी सत्ताएँ नहीं कहा जा सकता है, हालाँकि वे समाजवादी जुमलों का इस्तेमाल करती हैं। वेनेज़ुएला में शावेज़ और बोलीविया में इवो मोरालेस की सत्ताएँ कई ऐसी नीतियाँ लागू कर रही हैं जो जनता को उनकी बुनियादी आवश्यकताएँ सहज उपलब्ध करा रही हैं। अमेरिकी साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ ज़बरदस्त जनभावना के कारण इन सत्ताओं को जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त है। लातिनी अमेरिका में होने वाले इन परिवर्तनों पर अलग से चर्चा की आवश्यकता होगी। लेकिन निश्चित रूप से ये सत्ताएँ अमेरिकी साम्राज्यवाद को मुँह चिढ़ा रही हैं और साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ जनता की नफ़रत को अभिव्यक्ति दे रही हैं। अमेरिकी साम्राज्यवाद की अजेयता का तिलिस्म टूटने के साथ ही, विश्व की उभरती हुई ताक़तें भी अमेरिकी वर्चस्व को ठेंगा दिखा रही हैं। हाल ही में, अमेरिकी शह पर दक्षिण ओसेटिया पर जॉर्जिया द्वारा किये गये हमले को रूस ने मुँहतोड़ जवाब देते हुए कुचल दिया। रूस उभरती हुई साम्राज्यवादी ताक़त के रूप में अपने हितों को सुरक्षित कर रहा है और विश्व पैमाने पर अपने साम्राज्यवादी दावे को मज़बूत करने की लम्बी तैयारी कर रहा है। यूरोपीय संघ फ़िलहाल रूसी चुनौती से निपटने के लिए अमेरिका के साथ खड़ा है। लेकिन उसकी अपनी शर्तें और प्राथमिकताएँ हैं और अमेरिका के साथ उसका यह गँठजोड़ अस्थायी प्रकृति का है। चीन की बढ़ती आर्थिक शक्तिमत्ता उसे साम्राज्यवादी चौधराहट में हिस्सेदारी के लिए उसकी दावेदारी को सबसे मज़बूत बना रही है। मन्दी के दौरान भी चीन ने उपभोक्ता उपभोग के लिए कम प्रोत्साहन पैकेज दिया और अवसंरचना निर्माण के लिए अधिक। स्पष्ट है कि चीन लम्बी तैयारी कर रहा है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि अमेरिकी साम्राज्यवाद के नेतृत्व में एकध्रुवीयता का मिथ छिन्न-भिन्न हो चुका है, जिसे प्रभात पटनायक और एजाज़ अहमद जैसे नामी-गिरामी मार्क्सवादी सिद्धान्तकार भी प्रचारित कर रहे थे। यह बात दीगर है कि अब वह अपने शब्दों को ही खाने के लिए मजबूर हो गये हैं। विश्व पैमाने पर कई पूँजीवादी गुटबन्दियाँ उभर चुकी हैं। ये अपने हितों को हर अन्तरराष्ट्रीय पूँजीवादी मंच पर ज़ोर के साथ रख रही हैं और उस पर समझौता करने को तैयार नहीं हैं। पर्यावरण सुरक्षा के सवाल पर हुए कोपेनहेगेन सम्मेलन की असफलता भी इसी बात को दिखलाती है जो कुछ दिनों के भीतर ही कोपेनहेगेन से 'टोकेनहेगेन' और फिर 'ब्रोकेनहेगेन' में तब्दील हो गया।

बीते दशक में एक और बात का अंहसास और अधिक गहरा हो गया। पहले भी इस बात पर काफ़ी चर्चा और शोध हो चुका था कि पूँजीवाद पर्यावरण का विनाश कर रहा है और तमाम मानवतावादी और पर्यावरणवादी अपीलों के बावजूद पूँजीवाद की चौहद्दी के भीतर पर्यावरण की सुरक्षा की बात करना बेमानी है। 21वीं सदी के पहले दशक में ग्लोबल वॉर्मिंग, ग्लेशियरों के पिघलने और समुद्र के जलस्तर में बढ़ोत्तरी, ओज़ोन परत के छेद के बड़ा होने, जंगलों की बेतहाशा कटाई और रेगिस्तान के बढ़ने के साथ दुनियाभर की जनता के सामने यह तथ्य साफ़ है कि पर्यावरण का यह विनाश और उसके भयंकर प्रभाव अब जिस अनुपात में पहुँच रहे हैं वह ख़तरनाक है। अगर समय रहते इस आदमख़ोर व्यवस्था को नष्ट करके एक जनपक्षधर मानव-केन्द्रित व्यवस्था का निर्माण नहीं किया गया तो पूँजीवाद अपनी मुनाफ़े की हवस में मानवता और पर्यावरण दोनों को ही अपूरणीय क्षति पहुँचा चुका होगा। रोज़ा लक्ज़ेमबर्ग ने पिछली सदी में कहा था कि मानवता के सामने दो विकल्प हैं: समाजवाद या बर्बरता। आज हम कह सकते हैं कि मानवता के सामने दो विकल्प हैं: समाजवाद या विनाश। लेकिन हम विनाशवादी नहीं हैं जो पूँजीवाद द्वारा जारी पर्यावरण के विनाश से हताशा के गर्त में समा गये हैं। हमें मानवता के ऐतिहासिक विवेक पर यक़ीन होना चाहिए। ऐसे किसी भी विनाश से पूर्व पूँजीवाद का विनाश करने के लिए मानवता उठ खड़ी होगी। न क्योटो प्रोटोकॉल विश्व को पर्यावरण विनाश से बचा पाया था और न ही कोपेहेगेन बचा पायेगा। विश्व को इससे बचाने का माद्दा सिर्फ़ जनक्रान्तियों और उनके ज़रिये मेहनतकश जनता की सत्ताओं की स्थापना में है। जो भी पर्यावरण के विनाश को लेकर परेशान और चिन्ति हैं वे समझ रहे हैं कि जिस पर्यावरण विनाश को पूँजीवादी मीडिया मानवजनित विनाश बताता है वह वास्तव में मानवजनित विनाश नहीं बल्कि पूँजीवाद-जनित विनाश है और इसे पूँजीवाद के विनाश से ही रोका जा सकता है, और न सिर्फ़ रोका जा सकता है बल्कि पर्यावरण को कई अर्थों में पुनर्निर्मित भी किया जा सकता है।

21वीं सदी का पहला दशक लम्बे समय से सोये हुए और निराशा के गर्त में पड़े पूँजीवाद-विरोधी जनान्दोलनों के पुनर्जागरण का भी साक्षी बना है। इस दशक में विश्व के तमाम कोनों में मज़दूर आन्दोलनों, छात्र-युवा आन्दोलनों, नारी आन्दोलन, अश्वेत मुक्ति आन्दोलन और उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं के आन्दोलनों का नया उभार देखने को मिला है। पूँजीवाद के प्रकोपों से बेचैन जनता राहें टटोल रही है। यह सच है कि आज जनता की क्रान्तिकारी नेतृत्वकारी शक्तियाँ राजनीतिक-वैचारिक

तौर पर बहुत कमज़ोर हैं, सांगठनिक तौर पर छिन्न-भिन्न हैं, पुरानी क्रान्तियों का अन्धानुकरण करने की प्रवृत्ति से उन्हें अभी छुटकारा नहीं मिला है, लेकिन यह भी सच है कि विश्व के तमाम हिस्सों में तमाम नये प्रयास और प्रयोग भी हो रहे हैं और इंक़लाबी ताक़तें अतीतग्रस्ता को छोड़कर नये की खोज करने के प्रयत्नों में भी लग रही हैं। क्रान्तिकारी हिरावल ताक़तों के बीच नयी सदी की नयी क्रान्तियों को लेकर बहस-मुबाहसे भी जारी हैं। उम्मीद की जा सकती है कि नये प्रयोगों और इन बहस-मुबाहसों से नयी राह फूटेगी। जनता अपने सफल-असफल प्रयासों से सीखेगी और आगे बढ़ेगी। पूँजीवाद की अजरता-अमरता के तिलिस्म के ध्वस्त होने, उसके खोखलेपन के नग्न रूप में सामने आने और जनान्दोलनों के नये सिरे से शुरू होने के साथ नये दशक में आशा के नये स्रोत देखे जा सकते हैं।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 21वीं सदी के पहले दशक ने इस बात को फिर से साबित किया है कि यह सदी निर्णायक परिवर्तनों की सदी होने जा रही है। युगान्तरकारी बदलावों की घड़ी इस सदी में हमारा इन्तज़ार कर रही है। लेकिन ये परिवर्तन स्वयं नहीं होने जा रहे हैं। ये क्रान्तिकारी ताक़तों के सूक्ष्मतम, सर्वाधिक विकसित, और व्यापकतम उपयोग की माँग करेंगे। नयी क्रान्तियों का मार्ग अन्वेषित करने के लिए सिद्धान्त और प्रयोग के अनगिन प्रयोग करने होंगे और इन्हीं के परिणामस्वरूप हम निर्णायक क्रान्तियों को अंजाम देने की मंज़िल तक पहुँच सकते हैं। इतिहास के इस महासमर में अगर छात्र और युवा अपनी भूमिका तय नहीं करते तो यह सम्भव नहीं हो सकता है। जनपक्षधर उन्नत छात्रों-युवाओं को अतीत की क्रान्तियों के ज्ञान से लैस होना होगा, मौजूदा दुनिया को समझना होगा, जनता के संघर्षों से जुड़ना होगा, उन्हें नेतृत्व देना होगा और अपनी भूमिका को तय करना होगा। वरना एक बार फिर परिवर्तन की घड़ी निकल जाएगी, इतिहास हमारे तैयार होने का इन्तज़ार नहीं करेगा और अगर यह घड़ी निकल गयी तो हमारी सज़ा होगी फ़ासीवाद, जो इस बार और बर्बर, मानवद्रोही, और क्रूर रूप में आएगा। जो घड़ी क्रान्तिकारी सम्भावनाओं से भरी होती है, वही प्रतिक्रियावादी ख़तरों से भी भरी होती है। पूँजीवाद के संकट से दो रास्ते फूटते हैं। एक मानवकेन्द्रित मेहनतकश सत्ता और व्यवस्था की तरफ़ जाता है और दूसरा पूँजीवाद की नग्नतम और बर्बरतम फ़ासीवादी तानाशाही की तरफ़। तय हमें करना है कि हम इतिहास की दिशा को अपने बलिष्ठ हाथों से किस ओर मोड़ते हैं। हमें यक़ीन है कि इस देश का और दुनिया का युवा इतिहास द्वारा सौंपे गये इस चुनौतीपूर्ण कार्यभार से नज़रें नहीं चुरायेगा।

नया वर्ष नयी उम्मीदों, नये सपनों, नयी उड़ानों के नाम! लड़ने की ज़िद के नाम! न्याय और समानता के संघर्ष के नाम! उड़ने को आतुर युवा पंखों के नाम! दुनिया को समझने और उसे बदलने के नाम!

आह्वान पुस्तिका शृंखला के तहत प्रकाशित

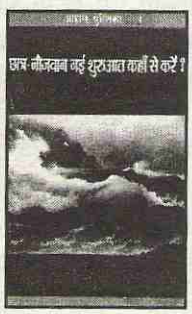

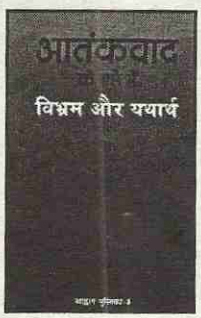

1. छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?
2. आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष
3. आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ
4. क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन: एक नयी शुरुआत से जुड़े कुछ सवाल और कुछ बुनियादी समस्याएँ
5. प्रेम, परम्परा और विद्रोह – कात्यायनी

मूल्य : पुस्तिका 1 से 3: 10 रुपये, पुस्तिका 4: 15 रुपये, पुस्तिका 5: 25 रुपये

प्राप्त करने के लिए संपर्क करें: आह्वान कार्यालय या

जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020